अध्याय पाँच

अमरकांत की कहानियों का सांस्कृतिक संदर्भ

अध्याय पाँच
अमरकांत की कहानियों का सांस्कृतिक संदर्भ

भारत की एकता का आधार संस्कृति है। यह वह जीवन पद्धति है जो मनुष्य मात्रा में आत्मीयता का अनुभव करते हुए समस्त विश्व में स्नेह बिखेरती है। संस्कृति ही वह अविरोधी वस्तू है जो मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग करती है और उसकी अलग पहचान बनाती है। वह दुःसमय में आज़ादी की सच्ची प्रेरणा बनती है। भारतीय संस्कृति अपनी समन्वयात्मकता, एकता, सहिष्णुता आदि के लिए विख्यात थी। लेकिन समय बदलने के साथ उसमें कई बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप हुआ। कुछ तो भारतीय संस्कृति में समा गए लेकिन कुछ ने तो उसको तहस-नहस करने की कोशिश की। अमरकांत का रचनाकाल स्वतंत्रता के बाद का समय है। इसलिए उनकी रचनाओं में स्वतंत्रता के बाद भारतीय संस्कृति में आए परिवर्तनों का जिक्र हुआ है। स्वतंत्रता के बाद पूँजीवादी अर्थकेन्द्रित रवैये में भारतीय संस्कृति का अपजय एवं सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ। औद्योगीकरण के फलस्वरूप उपजी शहरीकरण ने पारिवारिक जीवन को बुरी तरह झकझोरा। कला और साहित्य के क्षेत्र में भी एक अपसंस्कृति जन्म ली जो बिल्कुल अर्थ केन्द्रित थी। अमरकांत की कहानियाँ भारतीय समाज को इस अपसंस्कृति के चंगुल से मुक्त करने का उपाय ढूँढती हैं। मार-काट, झीना-झपटी की दुनिया में मिटती

मानवीय संवेदनाओं को पुनःस्थापित करने की कोशिश करती हैं। प्रस्तुत अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक समस्याओं का अमरकांत की कहानियों द्वारा अध्ययन की कोशिश हुई है।

5.1 संस्कृति : अवधारणा

'संस्कृति' मनुष्य को महान बनाती है। वह जानवरों से मनुष्य को अलग करती है। प्रत्येक देश की, प्रत्येक जाति की अपनी संस्कृति होती है जो वहाँ के जनसमूह की पहचान होती है। 'संस्कृति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्द 'सम' और 'कृति' के योग से हुई है। उसका मूल 'कृ' धातु में है जिसका अर्थ है 'मूल क्रिया'। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'संस्कृति' का अर्थ है - शुद्ध किया हुआ, परिष्कृत एवं परिमार्जित किया हुआ। अंग्रेज़ी भाषा में 'संस्कृति' के लिए कल्चर (culture) शब्द प्रचलित है। कल्चर (culture) शब्द लैटिन के 'कलचुरा' तथा 'कोलियर' शब्दों से निकला है जिनका अर्थ क्रमशः उत्पादन एवं परिष्कार है। अर्थात् उत्पादन के फलस्वरूप परिष्कार।

विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति शब्द को व्याख्यायित करने की कोशिश की है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।"[1] अर्थात् उसमें सब कुछ समाहित है। किसी देश के धर्म, दर्शन, परंपराएँ, कला, साहित्य सबका समन्वित रूप संस्कृति है। महादेवी वर्मा के अनुसार "संस्कृति मानव चेतना का ऐसा विकास-क्रम है, जो उसके अंतरंग तथा

---

1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ. 57

बहिरंग को परिष्कृत करके विशेष जीवन पद्धति का सृजन करती है।"[1] वस्तुतः संस्कृति मानव मन का परिष्कार करती है। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में संस्कृति की व्याख्या इस प्रकार दी है - "असल में संस्कृति जीवन का एक तरीका है जिसमें हम जन्म लेते हैं।.... अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ-साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज़ मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन में व्यापे हुए हैं तथा जिसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों का अनुभवों का हाथ है। ...संस्कार या संस्कृति असल में शरीर का नहीं आत्मा का गुण है।"[2] बाबू गुलाब राय के अनुसार "संस्कृति शब्द का संबन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना.... संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।"[3] अपने लेख द कनसेप्ट आफ कल्चर (The concept of culture) में क्लाइड और विलियम केले ने संस्कृति की व्यापक परिभाषा दी है - "सामान्यतः संस्कृति एक विवरणात्मक संकल्पना है - इसका एक पक्ष है - मानव के द्वारा सृजन का संचित कोश : पुस्तकें, चित्रमूर्ति, कलाकृतियाँ, स्थापत्य, संगीत आदि तथा दूसरा पक्ष मानव परिवेश में स्वयं को अनुकूल बनाते चलने की प्रक्रिया (सभ्यता) से संबद्ध है : भाषा प्रथा, संस्कार तथा इन तीनों में सिमटी शिष्टाचार, आचरण, धर्म,

---

1. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर, पृ. 12
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 32
3. बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 1

सदाचार जैसी व्यवस्थाएँ। संस्कृति के ये दोनों पक्ष किसी भी सभ्यता या समाज में युग-युगों को पार करके अपनी जगह बनाते हैं।"[1]

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि संस्कृति किसी एक समाज में पायी जानेवाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्ति होती है। संस्कृति जीवन जीने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, अनुभव के मूल्यांकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है।

5.2 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति निरंतर प्रवहमान धारा है। एकता, समन्वयात्मकता सहिष्णुता आदि उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्राचीन काल से लेकर भारत में जितनी जातियाँ, मंडलियाँ आ बसी है वे सब यहाँ की संस्कृति के अनुरूप रहने लगी या फिर भारतीय संस्कृति ने उन सब को अपने आप में समेट लिया। उपनिवेश काल में भी ऐसी स्थिति बनी रही। मौर्य साम्राज्य से लेकर मुगल साम्राज्य तक के युग में भारतीय संस्कृति अपनी अहम विशेषताओं के कारण अमर और अटल रही। लेकिन भारतीय संस्कृति को धक्का तब लगा जब अंग्रेज़ी उपनिवेश हुआ। अंग्रेज़ों ने भारत में अपना राज स्थापित करने की कोशिश की।

---

1. प्रो. दिलीप सिंह, भाषा, साहित्य और संस्कृति-शिक्षण, पृ. 188

जब से भारत अंग्रेज़ों के संपर्क में आए तबसे यहाँ के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में पाश्चात्य प्रभाव पडा। अंग्रेज़ों ने यहाँ अपना कारोबार शुरू किया। अपनी सुविधा के लिए यहाँ के लोगों को पाश्चात्य शिक्षा देने लगी। पुष्पपाल सिंह के अनुसार "पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव ने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ कर दिया। इस शिक्षा के प्रभाव से एक ओर तो पाश्चात्य जीवन-मूल्य और विचारधाराएँ हमारे नवयुवकों में प्रवेश कर रही थी और दूसरी ओर भारतीय परंपरा के परिसंस्कार के लिए अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन उठ खडे हुए।"[1] इस समय अनेक सुधारवादी संस्थाओं का उदय हुआ। हमारी पारंपरिक जडताओं के विरुद्ध आवाज़ उठने लगा। यहाँ सांस्कृतिक पुनर्जागरण की शुरुआत हुई।

पाश्चात्य संपर्क से लाभ तो भारतीय समाज को अवश्य हुआ है लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी था। इतने सारे सामाजिक परिवर्तन भारत में हुए लेकिन यहाँ से जाने के पहले ही उन लोगों ने अपनी संस्कृति को भारतीयों पर थोंपा था। अंग्रेज़ यहाँ व्यवसाय के लिए आये थे। उनका लक्ष्य था उनके पास जितनी पूँजी है उसमें वृद्धि करना। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन लोगों ने एक छद्म संस्कृति को यहाँ फैलाया जो भारतीयों के लिए बिलकुल अपरिचित थी, वह है पूँजीवादी संस्कृति। अंग्रेज़ों के प्रभाव में आकर भारतीय जनता अनजाने ही इस संस्कृति को अपनाया। अंग्रेज़ों के यहाँ से चले जाने के बाद भी यह पूँजीवादी संस्कृति का अंत

---

1. पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी : नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 43

नहीं हुआ। वास्तव में भारतीय जनता पूँजीपतियों और मज़दूरों में बँट गयी थी। यह उपनिवेशवाद की उपज थी। शंभूनाथ के शब्दों में "उपनिवेशवाद इतिहास को नहीं, कथा को भी उजाडता है, क्योंकि मानवीय मूल्यों और संबन्धों को नहीं, चीज़ों की यथार्थ समझ को भी ध्वस्त करना उसका एक प्रमुख सांस्कृतिक लक्ष्य है।"[1] पूँजीपतियों और मज़दूरों से बँटे बारतीय समाज में मानवीय मूल्यों की कोई गूँजाइश ही नहीं थी। पूँजी एक ओर इकट्ठी हो रही थी तो दूसरी ओर जनता घोर आर्थिक तंगी से गुज़र रही थी।

अर्थकेन्द्रित पूँजीवादी संस्कृति ने समाज को शोषकों और शोषितों में विभाजित कर दिया। पूँजीपति हमेशा शोषक बने रहे। निरीह जनता हमेशा शोषण की शिकार बनी रही। स्वातंत्र्योत्तर भारत को इसी पूँजीवादी संस्कृति और अर्थकेन्द्रित दृष्टि ने बहुत झकझोरा। जवहरलाल नेहरु के अनुसार "भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है जो बाहरी उपकरणों को पचाकर समन्वय और समन्जस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति को बढाती है। इसी समस्या का एक भिन्न प्रसंग में आज भी मुकाबला कर रहे हैं। आज भी कितनी बलिष्ठ शक्तियाँ है, जो केवल राजनैतिक ही नहीं, सांस्कृतिक एकता के लिए भी प्रयास कर रही है। लेकिन ऐसी ताकतें भी है, जो जीवन में विच्छेद डालती है, जो मनुष्य-मनुष्य के

---

1. शंभूनाथ, संस्कृति की उत्तरकथा, पृ. 46

बीच भेद-भाव को बढावा देती है।"[1] स्वातंत्र्योत्तर भारत में उपजी सारी समस्याएँ समाज में फैली अपसंस्कृति का दुष्परिणाम था।

एक ओर पाश्चात्य संस्कृति जनता को अपने चमत्कारपूर्ण रवैये के द्वारा आकर्षित कर रही थी तो दूसरी और इस संस्कृति की चकाचौंध में पड़कर भ्रामक जनता अंधाधुंध दौड़ में थी। इस संस्कृति के प्रभाव में आकर ग्रामीण जनता बेहतर ज़िंदगी की आशा करते हुए शहर की ओर आकृष्ट हुए। लेकिन कपटता और झीना झपटी की अर्थकेन्द्रित संस्कृति में उसका जीना मुश्किल हो गया। वह विस्थापन के यथार्थ से गुजर रहा था। उधर शहरी ज़िंदगी पश्चिमी संस्कारों के प्रभाव से उसके अंधानुकरण में सक्रिय थी तो वहाँ भी उलझनें शुरू हुई। पारिवारिक विघटन, पति-पत्नी संबन्धों में दरार आदि समस्याएँ ज़िंदगी को झकझोर रही थी। वास्तव में सुविधाएँ एवं अर्थ के पीछे की दौड ने भारतीय जनता से अपना चैन छीन लिया था।

वास्तव में पूँजीवादी संस्कृति की जडें भारत में जमी हुई थी जिसका नज़रिया अर्थकेन्द्रित है। इस अर्थकेन्द्रित दृष्टि ने मानवीय मूल्यों को टुकराया, सहिष्णुता की भावना को कम कर दिया तथा आपसी प्रेम और संवेदनाओं को नष्ट कर दिया। यह अपसंस्कृति ने मानव की सोच और विचारों को संकुचित बनाया। स्वार्थवृत्ति को बढावा दिया। अर्थात भारतीय संस्कृति जड होती दिखाई पडी। रामधारी दिनकर की राय में "इस संस्कृति में सामान्य तथा नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की अद्‌भुत योग्यता थी। जब तक इसका वह गुण शेष

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. xviii

रहा, यह संस्कृति जीवंत और गतिशील रही। लेकिन बाद को आकर इसकी गतिशीलता जाती रही, जिससे यह संस्कृति जड हो गयी और सारे पहलू कमज़ोर पड गए।"[1] स्वातंत्र्योत्तर कहानी इसी कमज़ोर पड गए पहलुओं को तलाशती है और उन्हें पुनः जीवंत बनाने की कोशिश करती है।

5.3 अमरकांत की कहानियों में मध्यवर्गीय संस्कृति

भारत का आधुनिक युग मध्यवर्ग द्वारा निर्मित है। स्वाधीनता के बाद उत्पन्न समस्याओं का सामना सबसे ज़्यादा इस वर्ग को करना पडा। इस वर्ग में जीवन की कुंठाएँ एवं विषमताएँ अधिक है। आधुनिक युग में जितना द्वन्द्व इस वर्ग को झेलना पडता है, उतना अन्य किसी वर्ग में नहीं है। यह वर्ग हमेशा अपनी स्थिति से ऊपर उठने के लिए संघर्षरत है। इसलिए यह वर्ग सदैव असमंजस में रहता है। अमरकांत स्वातंत्र्योत्तर भारती के मध्यवर्गीय जीवन की आलोचना करते हैं। उनकी कहानियाँ पूँजीवादी अर्थकेन्द्रित समाज में हुए सांस्कृतिक पतन का उद्‌घाटन करती है। औद्योगीकरण एवं पूँजीवादी संस्कृति की चकाचौंध में भारतीय संस्कृति के मूल्य एवं आदर्शों का पतन भारतीय जनता की जिंदगी पर लाए दुष्प्रभाव का पर्दाफाश करती है। उनकी कहानियों में आज कल समाज के सभी क्षेत्रों में व्याप्त अपसंस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से उत्पन्न पारिवारिक उलझनें, सांस्कृतिक विस्थापन की समस्या, धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध आदि का अंकन हुआ है। इसके साथ ही मध्यवर्गीय ज़िंदगी के आचार-विचार, रहन

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. xvii

सहन, रीति-रिवाज़, पारिवारिक व्यवस्था आदि पर भी थोडे ही सही विचार अवश्य किया है।

अमरकांत की कहानियों का आधार मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय समाज है। इसलिए किसी जातिविशेष की विशेषताएं और, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि को उसमें ढूँढ़ पाना मुश्किल है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मध्यवर्गीय जीवन की खासियतें उसमें समाविष्ट होता दिखाई पड़ता है।

5.3.1 परिवार

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज से ही अमरकांत ने अपनी कहानियों का विषय चुना था। भारतीय संस्कृति के अनुसार यहाँ का पारिवारिक ढाँचा संयुक्त परिवार का रहा है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद के नये परिवेश और नयी समस्याओं ने पारिवारिक जीवन में भी अपना हस्तक्षेप किया और यहाँ की पारिवारिक ढाँचा बिलकुल बदल गया। संयुक्त परिवार एकल परिवार में तब्दील होने लगा। कह सकते हैं कि समय की माँग के अनुसार पारिवारिक जीवन में भी परिवर्तन आया। इसलिए अमरकांत की अधिकांश कहानियों में एकल परिवार का ही जिक्र हुआ है। संयुक्त परिवार का जिक्र तो इने-गिने कहानियों में ही मिल सकते हैं जैसे 'सवा रुपये'। 'सवा रुपये' में माँ-बाप उनके बच्चे और पोते आदि एक साथ मिल जुलकर रहनेवाले परिवार का जिक्र हुआ है तो 'केले पैसे और मुँगफली', 'तूफान', 'लड़का-लडकी', 'बढते पौधे', 'सहधर्मिणी', 'लड़की की शादी', 'ज़िंदगी और जोंक', 'दोपहर का भोजन' आदि अधिकांश कहानियों में माँ-बाप और बच्चों से बने एकल परिवार का चित्रण मिलता है।

5.3.2 रहन-सहन एवं वेशभूषा

जैसे कि पहले कहा जा चुका है अमरकांत की कहानियों का आधार मध्यवर्गीय जीवन है। इसलिए उनकी कहानियों में ऐसी वेश-भूषा एवं रहन सहन को ढूँढ पाना मुश्किल है जो किसी विशेष जाति का बोध कराता है।

मध्यवर्ग में तरह-तरह के काम करनेवाले लोग है। सबकी आर्थिक स्थिति बराबर नहीं होती। इसलिए वे अपनी हैसियत के अनुरूप पहनावा चुनते हैं। 'गले की जंजीर' कहानी में अमरकांत ने एक व्यक्ति की वेश-भूषा का जिक्र इस प्रकार किया है - "....उसने महीन सफेद धोती तथा रेश्मी कुर्ता पहन रखा था। इसके अलावा उसके गोरे गले में एक सोने की जंजीर सुशोभित थी।"[1] 'सवा रुपये' कहानी में बाबा की वेशभूषा का जिक्र यों किया है - "घुटने तक मोटी धोती, पुरानी शान्दार मिरजई, सिर पर मोटे रस्से की तरह लिपटी पगडी और पैरों ने कडवे तेल से मुलायम किये चमरौधे जूते।"[2] संत तुलसीदास और सोलहवाँ साल में तुलसीदास नामक व्यक्ति की वेशभूषा का जिक्र है जो बहुत ही दिखावटी है - "दो फेरे की उटुंग धोती, काफी लंबी कुर्ता, उस पर एक जाकट, उसके ऊपर एक कोट, पैरों में बिना मोजे के फ्लैक्स जूते तथा हाथ में लाल सोंटा।"[3] इस प्रकार अमरकांत की कहानियों में इन्होंने मध्यवर्गीय आदमी की पहनावे का जिक्र किया है।

---

1. अमरकांत, गले की जंजीर, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 21
2. अमरकांत, सवा रुपये, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 39
3. अमरकांत, सन्त तुलसीदास और सोलहवाँ साल, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 30

5.3.3 मेले और उत्सव

अमरकांत ने पर्व, त्योहार, एवं मेले जैसी बातों का जिक्र भी बहुत कम ही किया है। बातों ही बातों में यूँ ही वे उसका उल्लेख करते हैं। जैसे 'लाखो' कहानी में गंगा के किनारे लगे मेले का अंकन हुआ है और 'जोकर' नामक कहानी में धार्मिक उत्सव के बारे में कहा गया है। लेकिन इन सबका विस्तृत वर्णन नहीं मिलता।

5.3.4 रीति-रिवाज़

'फूलरानी' कहानी में रईसों के घर में शादी-ब्याह के समय वेश्या को बुलाये जाने की रीति का चित्रण हुआ है। शादी के बाद जब बेटियों को विदा करते हैं तब वेश्या को बुलाया जाता है विदाई के गीत गाने के लिए। वेश्याएँ उस समय भैरवी, भजन, दादरा, गज़ल, पुरवी आदि के गीत गाती हैं।

5.3.5 संगीत

अमरकांत ने अपनी कहानी में गीत का समावेश किया है। 'फूलरानी' कहानी में शादी ब्याह के वक्त वेश्याओं को बुलाये जाने का और गीत गाने का जिक्र हुआ है। रईसों के घर में बेटियों की शादी के वक्त यह होता है। शादी के बाद विदाई के रस्म के समय वेश्याओं को बुलाया जाता है और वह मुबारक गीत गाते हुए सबको खुश करता है-

"दुल्हनिया पिया के घर को चली,
मुबारक हो, मुबारक हो।

दुल्हनिया बाबा का घर छोड चली
मुबारक हो, मुबारक हो।
दुल्हनिया अम्मा का आँचल छोड चली
मुबारक हो, मुबारक हो"[1]

इस प्रकार उनकी कहानियों में गीतों का समावेश भी हुआ है जो प्रत्येक समाज के किसी खुशी की वेला में गाया जाता है।

वस्तुतः अमरकांत की कहानियों में संदर्भ के अनुरूप मध्यवर्गीय समाज के बीच प्रचलित मेले और उत्सव, संगीत, आदि के अंकन के साथ समय के अनुकूल बदलते पारिवारिक ढाँचे की भी अभिव्यक्ति हुई है।

5.3.6 कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त अपसंस्कृति

आजकल समाज में कई सांस्कृतिक शैक्षिक संस्थाएँ कार्यरत है। वास्तव में उन संस्थाओं का गठन सांस्कृतिक प्रगति को लक्ष्य करके किया गया है लेकिन आज ये संस्थाएँ नेताओं को अपनी हैसियत बनाने का साधन मात्र बन गयी हैं। मतलब इन संस्थाओं पर ऐसे लोगों का कब्जा है जो संस्कृति के बारे में कुछ नहीं जानते हो और इन संस्थाओं के ज़रिए अपना राजनीतिक हैसियत बनाना चाहते हो। अमरकांत जी ने सांस्कृतिक संस्थाओं का फायदा उठानेवाले ढोंगी नेताओं के दिखावटीपन का पर्दाफाश अपनी कहानियों के माध्यम से अवश्य किया है। 'सफर' कहानी इसके लिए प्रमाण है।

---

1. अमरकांत, फुलरानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 291

'सफर' कहानी में गौरीबाबू और भृगुनाथ अंचल की दो परस्पर विरोधी राजनैतिक पार्टियों के दोनों ही आंचलिक स्तर के कट्ठर नेता थे। दोनों को संस्कृति सम्मेलन में निमंत्रित किया गया क्योंकि दोनों ही राजनीतिक नेता होने के साथ-साथ अनेक सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संगठनों के अध्यक्ष, महामंत्री, संरक्षक आदि थे। ना-ना करते रहने पर भी कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण निजी एवं सार्वजनिक कारणों से दोनों ने ही सम्मेलन में शामिल होने का संकल्प कर लिया। संयोग की बात यह है कि दोनों को एक ही दिन, एक ही गाडी के डिब्बे की आमने-सामनेवाली बर्थों पर बैठकर उस जलसे के लिए प्रस्थान करना पडा।

डिब्बे के भीतर घुसते ही दोनों विनम्रता और भाईचारों का अभिनय करने लगे। दोनों आपस में बातें करने लगे। उस सांस्कृतिक सम्मेलन में दोनों को बुलाए जाने का परिणाम यह निकला कि कृत्रिम प्रदर्शन के ज़रिए ही सही दोनों राष्ट्र की दिशा एवं दशा पर बातें करने लगे। इस सांस्कृतिक सम्मेलन में बुलाए जाने के संबन्ध में गौरीबाबू के विचार के बारे में अमरकांत कहते हैं - "इतने वर्ष बीत गये, छोटे-मोटे राजनैतिक सम्मेलनों की बात और है, पर इतने उच्च सांस्कृतिक सम्मेलन में उनको पहले क्यों नहीं बुलाया गया और जब बुलाया गया है तो इसका मतलब यह है कि उनमें काबिलीयत है और सांस्कृतिक बुलंदियों पर पहूँचने की क्षमता भी। सम्भव है कोई बडा काम उनको सौंपा जानेवाला हो अथवा हो सकता है कि देश का राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक उद्धार उन्हीं के हाथ होनेवाला हो। ऐसे ही भावनाओं और विचारों से प्रभावित होकर वे महानता के आकाश में विचरण करने लगे थे। हाँ सम्मेलन के लोग देखेंगे कि वे कैसे सभ्य, उदार

चरित्रवान तथा राष्ट्रभक्त हैं। वे वहाँ बताएँगे कि राष्ट्र की वास्तविक परिभाषा क्या है, संस्कृति की परिभाषा क्या है और राष्ट्रीयता किसे कहते हैं?"[1] वास्तव में दोनों का लक्ष्य उस सम्मेलन में भाग लेना और अपना हैसियत बढाना मात्र था। सम्मेलन स्थान पर पहुँचकर उन्हें एक होटल में रहने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ पहूँचकर दोनों अपने को ओर अधिक सुसंस्कृत और सभ्य घोषित कराने का कठिन परिश्रम करते रहे।

सम्मेलन समाप्त होने पर दोनों नाश्ते के लिए चले गए। नाश्ते का भी बडा अच्छा इन्तज़ाम था। शुरू में मांसाहारी नाश्ता था और दूसरी ओर शाकाहारी। इस संबन्ध में माइक से ऐलान भी हो चुका था लेकिन दोनों नेता देर से पहुँचे थे और मांसाहारी भीड़ में ही घुस गए। दोनों ने अपने कसरती शरीर का इस्तेमाल करते हुए दो-चार आदमियों को विस्थापित भी कर दिया था और चार-चार कटलेट लेकर चापुट-चापुट खाने लगे। तब किसी की आवाज़ सुनी कि मछली का कटलेट बडा अच्छा बना है। दोनों को तभी पता चला कि वे मांसाहारी भोजन की भीड़ में घुस गए थे। बाद में दोनों शाकाहारी नाश्ते की ओर चले और अंत में कलाकन्द उन्होंने इसलिए खाया कि वे अन्दर जाकर मांसाहार का प्रभाव नष्ट कर देंगे। नाश्ते के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। संस्कृति के संबन्ध में इतना बडा विचार प्रकट करनेवाले नेता सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने के लिए तैयार नहीं थे। नाश्ते के बाद गौरीबाबू कहते हैं - "अब सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं देखेंगे, भृगुनाथ.... नाश्ते ने सब गुड गोबर कर दिया। अब होटल चलते हैं। खाना तो दस

---

1. अमरकांत, सफर, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 116

बजे है न?"[1] वे आदर्शवान नेता बाद में मदिरापान भी करते हैं। मदिरापान के बाद दोनों सुसंस्कृत और सभ्य नेताओं के असले चेहरे बाहर निकलते हैं। अमरकांत जी कहते हैं - "....इसके बाद तो पेग पर पेग ढलने लगे। बीच-बीच में वे एकाध टुकडा कुछ खा लेते थे। उनके चेहरे तमतमाने लगे हिटलर की तरह। बातें भी उनकी ज़ारी थीं.... उखडी-उखडी असम्बद्ध। बातों की शुरुआत धीमे स्वर में हुई थी। पर अब वे ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगे थे, जैसे झगड़ा कर रहे हों। बीच-बीच में जबान लडखडा जाती या बाहर निकल आती। अचानक गौरीबाबू ने सम्मेलन के आयोजकों को गालियाँ देते हुए थूः थूः कहा और सचमुच नीचे थूक भी दिया।"[2] सम्मेलन के समाप्त होने के बाद दोनों एक ही गाडी पर वहाँ से रवाना हो गए। अपने स्टेशन पर उतरते ही दोनों असली नेता ही बन गए। दोनों ने एक-दूसरे की ओर नहीं देखा, नमस्कार भी नहीं किया। दोनों ने रुखाई से मुँह फेर लिए और अपने-अपने समर्थकों की भीडों के बीच खो गए। इस प्रकार हो अवसरवादी नेता का जिक्र अमरकांत ने किया है, जिनके लिए सांस्कृतिक संस्थाएँ यश कमाने और अपनी हैसियत बढाने का माध्यम मात्र है। ऐसे नेतागण आज भी समाज में मौजूद है जो इस प्रकार की सांस्कृतिक संस्थाओं के लक्ष्य को निरर्थक बनाते हैं। वास्तव में 'सफर' सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त अपसंस्कृति एवं झीना-झपटी की कहानी है।

कला और साहित्य भारतीय संस्कृति के रूपायन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन आज दोनों क्षेत्र एक अपसंस्कृति की आड़ में है। स्वार्थ और

---

1. अमरकांत, सफर, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 121
2. वही, पृ. 122

लोभ की भावना ने इनकी महत्व को कम कर दिया है। आज इन दोनों क्षेत्रों में ऐसे लोगों का बोलबाला है जो केवल यश एवं अर्थ के प्रार्थी है। 'कला प्रेमी' नामक कहानी में अमरकांत ने इसी समस्या को उजागर करने की कोशिश की है।

प्रस्तुत कहानी में अमरकांत ने दो प्रकार के कलाकारों की ओर इशारा किया है। पहला शुद्ध कलाकार जो कला और साहित्य को साधना के रूप में स्वीकार कर ईमान्दारी और सच्चाई से उसकी पूजा करनेवाला और दूसरा जो है अपने स्वार्थ और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कला और साहित्य का इस्तेमाल करनेवाला। रूपचंद पहली कोटी में आनेवाले कलाकार है और सुमेर दूसरी कोटी में। कहानी के प्रारंभ में सुमेर रूपचंद की याद करता है जो पुरस्कार प्राप्त कलाकार है लेकिन एक पतली, बदबूदार और अंधेरी गली में रहता है क्योंकि उसने कामर्शियल आर्ट नहीं अपनाया। सुमेर का विचार है "आप कामर्शियल आर्ट नहीं अपनाएँगे और अपने प्रचार के लिए स्वयं आगे नहीं बढेंगे, यह भी ठीक ही है। जब आप झुर्री-झुर्री हो जाएँगे और किसी देशी अथवा विदेशी समीक्षक की नज़र आप पर अचानक पड जाएंगी तो आपका नाम रोशन हो ही जाएगा। तब आपको धन मिलेगा और यश भी। कहीं ऐसा नहीं हुआ तो मरने के बाद यश कहीं गया नहीं। यह है अमरत्व प्राप्त करने का रास्ता।"[1] मतलब सुमेर का लक्ष्य कला की उपासना तो नहीं था, वह केवल यश और अर्थ की प्राप्ति की होड़ में था।

बाद में सुमेर की मुलाकात मालती रंजन से होती है। उसका जीवन कला और संस्कृति के लिए पूरी तरह समर्पित था और कई वर्षों से प्रादेशिक कला संघ

---

1. अमरकांत, कलाप्रेमी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 418

की अध्यक्षा भी थी। उससे पहली ही मुलाकात में सुमेर ने बीमा कम्पनी के एजेन्ट, कमज़ोर शिष्य अंग्रेज़ी के प्रोफेसर और सियार के गुणों का अद्‌भुत मिला-जुला प्रदर्शन किया तथा अपने कुछ चित्र उसकी सेवा में प्रस्तुत किए जिससे वह बेहद प्रभावित हुई और उसे कला संघ का सदस्य बना दिया। उसे संघ की बैठक में भाग लेने के लिए बुलाया गया। उसने सेकण्ड क्लास से यात्रा की और एक साधारण होटल में ठहरा। उसका विचार था कि आज दुनिया जिस नीति पर चलती है, उसी नीति पर उसे भी चलना चाहिए। वह सोचता था - "जब सभी लोग लाभ के लिए धक्कम-धुक्की कर रहे हो, उस समय संतई का प्रयास करना कहाँ तक ठीक है? और सिर्फ धन-लाभ की ही बात नहीं है, वह तो महत्वपूर्ण है ही लेकिन इसके साथ ही आपकी चाल-ढाल, आपकी बातचीत, आपका सिद्धांत, आपके विचार सब कुछ इस तरह सधे होने चाहिए कि लाभ सदा आपको ही मिले आपको कभी भी क्षति उठानी न पडे और कोई आपसे चालाक न समझा जाये।"[1] जब सुमेर अन्य कलाकारों से सेकण्डक्लास यात्रा की कहानी सुनाई तो एक ने कहा - "कौन कहा है, यार? भत्ता-वत्ता सब मिलेगा। कोई नहीं पूछता। पूरा राम-राज्य है। सभी यही करते हैं। जो नहीं आता वह ले जाता है तुम तो शरीर के साथ आये हो।"[2] यहाँ अमरकांत ने कला और साहित्य के क्षेत्र में होनेवाली भाड़ा वसूलने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

---

1. अमरकांत, कलाप्रेमी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 421
2. वही

आज कला और साहित्य के क्षेत्र में ऐसी एक अपसंस्कृति फैली है जिसमें धन और यश ही सर्वमान्य हो। सुमेर जैसे कलाकार इस अपसंस्कृति को पनपने के लिए पूरा योगदान देता रहता भी है। अमरकांत ऐसे साहित्यकारों में से नहीं थे और उन्होंने कभी भी अर्थ और यश की लालसा से सर्जना नहीं की थी। उनका जीवन ही इसका प्रमाण है। साहित्य और कला के क्षेत्र में फैली इस अपसंस्कृति से वे पूरी तरह वाकिफ थे। 'कला प्रेमी' नामक कहानी इस प्रकार यश और अर्थ प्रार्थी कलाकारों पर और ऐसे कलाकारों की पूरी संस्कृति पर तीखा प्रहार करती है। उनकी 'मदमस्त', 'म्यान की दो तलवारें' आदि कहानियाँ भी इसी कोटी में आती हैं।

5.3.7 पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बहुत बडा है। पाश्चात्य देशों का भारत पर उपनिवेश का बहुत ही लंबा और सदियों पुराना इतिहास है। लेकिन पाश्चात्यों के यहाँ से चले जाने के बाद भी भारत की जनता पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त नहीं है। पश्चिमी उपनिवेश और औद्योगीकरण ने भारतीय समाज पर लाभकारी परिवर्तन तो अवश्य लाया है फिर भी जैसे कि कहते हैं कि एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं, वैसे ही इस उपनिवेश और औद्योगीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में कई जटिल समस्याएं भी जन्म लेने लगी थीं। आधुनिक शिक्षा (अंग्रेज़ी शिक्षा), विज्ञान का आविर्भाव आदि ने मानव को तार्किक बनाया। भारतीय समाज में प्रचलित रूढियों का उन्मूलन तथा सामाजिक प्रगति को लक्ष्य करके कई सुधारवादी संस्थाओं ने भी जन्म लिया। भारत में

आधुनिक युग का आरंभ हुआ। आधुनिकता ने मनुष्य को तार्किक बनाया। भारतीय समाज में नए उन्मेष जगे। लेकिन दूसरी ओर जनता यांत्रिकता की दुनिया की ओर आकृष्ट होने लगी। उनका भ्रामक मन यह सोचने लगा कि आधुनिक होने का मतलब पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण है। आधुनिकता और औद्योगीकरण की प्रवृत्ति से एक ओर मनुष्य का बौद्धिक विकास तो हुआ दूसरी ओर उसकी मानसिक संवेदनाएं संकुचित होने लगी। जवहरलाल नेहरु के शब्दों में - "जब पश्चिम के लोग समुद्र के पार से यहाँ आये, तब भारत के दरवाज़े एक खास दिशा की ओर खुल गये। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता बिना किसी शोर गुल के, धीरे-धीरे, इस देश में प्रविष्ट हो गयी। नये भावों और नये विचारों ने हम पर हमला किया और हमारे बुद्धिजीवी अंग्रेज़ी-बुद्धिजीवियों की तरह सोचने का अभ्यास करने लगे। यह मानसिक आँदोलन, बाहर की ओर वातायन खोलने का यह भाव, अपने ढंग पर अच्छा रहा, क्योंकि इससे हम आधुनिक जगत को थोडा-बहुत समझने लगे। मगर, इससे एक दोष भी निकला कि हमारे ये बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न हो गये, क्योंकि जनता विचारों की इस नयी लहर से अप्रभावित थी। परंपरा से भारत में चिंतन की जो पद्धति चली आ रही थी, वह टूट गयी।"[1] इसके परिणाम स्वरूप भारतीय जनजीवन पर कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। पाश्चात्य संस्कृति का अतिप्रसरण और उसका अंधानुकरण व्यक्ति मन को संकुचित करने लगे और बच्चों से लेकर बूढे तक इस अपसंस्कृति के दुष्परिणामों के शिकार होने लगे।

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. xii

आधुनिक युग में जन्मी नयी पीढ़ी ने पुराने मूल्यों की ओर नकारात्मक दृष्टि से रवैया अपनाया। यह पारिवारिक उलझन का कारण बना। परिवार में बूढे लोग फालतू की चीज़ मानने लगे। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पडा। भारतीय संस्कारों की अपेक्षा हर कहीं पश्चिमी संस्कारों का अतिप्रसरण होने लगा। आधुनिक युग की भारतीय शिक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव को सिद्ध करते हुए हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं - "आधुनिक भारतीय शिक्षा में भारतीय संस्कारों की अपेक्षा पश्चिमी संस्कार अधिक है।"[1] पश्चिमी संस्कारों का इस आधिक्य ने भारतीय समाज को झकझोरा। समाज के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में पाश्चात्य संस्कार के प्रभाव से उत्पन्न उलझनों का जिक्र करने में भी अमरकांत की तूलिका हिचकती नहीं है।

अमरकांत की कहानी 'उनका आना जाना' पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से उत्पन्न पीढ़ी संघर्ष एवं पारिवारिक उलझन की कहानी है। कहानी में गोपाल दास अपने बच्चों को पढ़ाया, बडा किया अपने ही खानदान में उनकी शादी कराई। उनकी आशा थी कि अपने पोते और पोतियों की भी शादी अपने ही पुश्चैनी घर में हो जाये। लेकिन उनकी इच्छा के विरुद्ध बेटे और बहू बच्ची की शादी अपने ही घर में, शहर में करना उचित समझते हैं। उनका कहना है - "बेबी की शादी उस घर से किसी भी हालत में नहीं हो सकती। मेरी इज्जत आबारू का सवाल है, बडे-बडे लोग आएँगे। आप लोग यहीं आकर लड़की को आशीर्वाद दे जाइए....।"[2]

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कालिदास की लालित्य योजना, हज़ारी प्रसाद द्विवेदगी ग्रंथावली भाग 8, पृ. 165
2. अमरकांत, उसका आना जाना, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 460

गाँव से अपनी बेटी की शादी होना उनके लिए अपनी इज्जत कम होने के समान है। जिस गाँव में वह पला-बढ़ा, वही गाँव आज उसके लिए फालतू की चीज़ मात्र है। इतना ही नहीं शादी में आनेवाले जो बडे-बडे लोग है, उनके सामने अपने माँ-बाप गँवार है। इसलिए रवी अपने पिता का परिचय तक अपने अफसरों से कराना नहीं चाहता। उसके रहन-सहन, खान-पान आदि में भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देख सकते हैं। जब शादी का बारात आ जाती है तो गोपालदास की बहू प्रमीला ऐलान करती है - "भई, यहाँ रे-बरे न कीजिए। बारात का रिसेप्शन होने जा रहा है। वे बडे फारवर्ड हैं ऐसा न हो कि आप में से कोई बैठी रह जाएँ। तब बडी बदनामी होगी। हाँ, रिसेप्शन के बाद डिन्नर होगा, उसमें चम्मच से खाइएगा, हाथ से नहीं।"[1] यह पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण है। ऐसे लोगों के लिए वही आधुनिक और फारवर्ड है जो कोट और स्यूट पहनते हैं और फोर्क और चम्मच से खाते हैं। इस प्रकार की यह सोच और व्यवहार पारिवारिक संबन्धों में दरार पैदा करता है। गोपालदास का परिवार ऐसे अनेकों परिवार में से एक है जो इस अपसंस्कृति के फैलाव से उत्पन्न झंझडों में उलझ गए हैं।

अमरकांत की कहानी 'फुलरानी' वेश्या जीवन पर पाश्चात्य संस्कृति के बुरे प्रभाव को अभिव्यक्ति देती है। फुलरानी आर्थिक पराधीनता के कारण अपना शरीर बेचकर ज़िंदगी बिताया करती थी। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण अपनी बेटियों को भी शिक्षा नहीं दे सकी। वे भी वेश्यावृत्ति करने लगीं। स्वातंत्र्योत्तर

---

1. अमरकांत, उनका आना जाना, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 468

भारतीय समाज में आए परिवर्तनों ने उनकी ज़िंदगी को भी बहुत अधिक प्रभावित किया। पुराने संगीतों और नृत्यों की लोकप्रियता घटती गयी। वेश्यालयों में भी परिवर्तन की माँग की गयी। लेकिन अधेड़ फुलरानी अपने पुराने दिनों का बखान करने लगती थी। लेकिन नयी दुनिया की रुख बेटियाँ जानती थी। बदली दुनिया और माँग की ओर इशारा करते हुए फुलरानी की बेटियाँ कहती है - "अम्मा, तुम्हें क्या हो गया है, तुम देखती नहीं कि ज़माना किधर जा रहा है। हमेशा वही रट- साडी, सलीका, पक्का गाना, रईस, कद्रदान। अब कहाँ है वे सब? सब घास चरने चले गये। अब तो उन आरामतलब रईसों की जगह सूट-बूट में रहनेवाले मेहनती, नये लोग आ गये हैं। वे गज़ल-सज़ल, भजन भैरवी से मीलों दूर रहते हैं। उर्दू-सुर्दू को पास भी फटकने नहीं देते। वे गिटपिट अंग्रेज़ी हैलो-हाय करते हैं, अमेरिका विलायत घूमते हैं। जहाँ जाते हैं सबसे अच्छे होटलों में ठहरते हैं..... वहीं सब कुछ उन्हें मिल जाता है....।"[1] मतलब समाज पर हावी पाश्चात्य संस्कृति समाज के हर तबके में परिवर्तन की माँग करती है। यहाँ वेश्याजीवन बितानेवालों को भी अपनी धंधे को आगे बढाने के लिए इस संस्कृति को अपनाना पड रहा है।

विलायत जाकर लौट आनेवालों के प्रति भी जनता बहुत ही आदर-सम्मान दिखाती है। यह भी इसी संस्कृति का जनता के अंतर्मन पर प्रभाव का प्रमाण है। 'अमेरिका की यात्रा' नामक कहानी में कथावाचक का दोस्त कहता है - "....भारत में रहकर उन्नति करना मुश्किल है और इसके लिए अमेरिका जाना

---

1. अमरकांत, फुलरानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 292

आवश्यक है। यहाँ लाख रगडो, कोई नहीं पूछेगा, और वहीं अमेरिका से लौट आओ तो सभी चरण पकडेंगे।"[1] यह आजकल लोगों की मानसिकता है कि विलायत जाकर लौटने से इज्जत बढता है। अपने ही देशों में काम करनेवाले, यश कमानेवाले, नाम रोशन करनेवालों के प्रति यहाँ के लोगों की कोई दिलचस्पी ही नहीं।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि अमरकांत ने अपनी कहानियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर छाई अपसंस्कृति को पाठकों के सामने पेश करते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि आज भारतीय संस्कृति भारतीयों के लिए अन्य हो गयी है और उसमें पश्चिमी संस्कार घुलमिल गए हैं तथा एक छद्म संस्कृति जन्म लिया है जिसमें यांत्रिकता अधिक और संवेदनाएं कम दिखाई पडती हैं।

5.3.8 दो संस्कृतियों का द्वंद्व एवं सांस्कृतिक विस्थापन

औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भारत में बहुत सारी सुविधाएँ लायीं। नए-नए आविष्कार हुए। यंत्रों के आविष्कार ने जनता के शारीरिक श्रम को कम कर दिया। कृषि के क्षेत्र में नई-नई योजनाएँ बनीं। स्वतंत्रता के बाद औद्योगीकरण की आड में ग्राम और ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी गयीं। लेकिन ग्रामीण संस्कृति और प्रकृति के अनुरूप न होने के कारण ये योजनाएँ सफल नहीं हुई। शहरी संस्कृति और रोज़गार के खुले अवसरों से प्रभावित होकर

---

1. अमरकांत, अमेरिका की यात्रा, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 155

ग्रामीण जनता शहर की ओर उद्यत हुई। लेकिन शहरी संस्कृति उसके लिए बिलकुल भिन्न थी। वहाँ इनसानियत का कोई स्थान नहीं था। वह एक अंधाधुंध दौड की दुनिया थी। शोर-शराब और भीड के बीच फंसी ग्रामीण जनता शहर की छल-कपट भरी संस्कृति को पहचान नहीं पायी। वह पहले अपनी भूमि से विस्थापित हो गयी बाद में शहर से भी, जहाँ उसने नयी ज़िंदगी के सपने लेकर गया था। शंभूनाथ के शब्दों में "समकालीन समूह संस्कृति समाज को जितने व्यक्ति है, उतने खंडों में बाँट देती है। एक-दूसरे को जोडनेवाले पारिवारिक, स्थानीय और राष्ट्रीय सूत्रों को क्षत-विक्षत कर देती है। बच्चे, स्त्री, दलित नौजवान, किसान-मज़दूर सभी टेक्नालॉजी के उस जादू में खो जाते हैं, जो बर्फ में आग लगा सकती है। जो टेक्नालॉजी मनुष्य की ताकत से इतना आगे बढ़ी, आज उसी का इस्तेमाल मनुष्य को कमज़ोर और खोखला करने के लिए किया जा रहा है।"[1] मनुष्य की सारी भावनाओं को क्षत-विक्षत करनेवाली एक संवेदनशून्य संस्कृति आज पनप रही है। जिसमें मानवीय मूल्यों का नहीं कपटता और छल का प्रातिनिध्य है।

अमरकांत ने अपनी कहानियों में ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति के बीच के द्वंद्व और सांस्कृतिक विस्थापन की समस्या का खुलासा किया है। 'कुहासा' नामक कहानी में दूबर खेतिहर मज़दूर झींगुर का बेटा था। वह सत्रह साल का लडका था। बाढ़ में गाँव की खेती चौपट हो जाती है। गाँव के लोग खाने के लिए तरसने लगे। तंग आकर दूबर शहर भाग जाता है। लेकिन शहर उसके लिए बिलकुल भिन्न था।

---

1. शंभूनाथ, संस्कृति की उत्तरकथा, पृ. 179

अमरकांत कहते हैं - "वह शहर धर्म, संस्कृति व राजनीति का केन्द्र था। खास तरह से वह ऊँचे-ऊँचे खुबसूरत मकानों, भव्य मंदिरों, मस्जिदों एवं गिरिजाघरों, दबंग मानववादी नेताओं, करोडपति सेठों तथा अंग्रेज़ी शिक्षा प्रभावित अधिकारियों के लिए विख्यात था।"[1] ऐसे शहर में वह पहूँचता है जहाँ लोग धन और यश के पीछे अंधाधुंध दौड में हैं। वहाँ दूबर की मुलाकात एक नेता से होती है। नेता मकान और कपडे का वादा देकर उसका फायदा उठाता है। उसे चुनाव प्रचार के लिए ले जाता है। लेकिन जब चुनाव जीतता है तभी नेताओं का असली चेहरा सामने आता है। लेकिन तब भी दूबर मकान और कपडे की प्रतीक्षा में रहता है क्योंकि वह एक साधारण निरीह ग्रामीण बालक है जो छल और कपट की दुनिया से पूरी तरह अनभिज्ञ है। उसको दान में एक कंबल मिल गया था। जाडे की रात थी। शहर की उस झीना-झपटी की संस्कृति में वह कंबल भी उससे झीन लिया जाता है। अंत में उसका कोमल शरीर जाडे को सहन नहीं कर पाया। वह मर गया। प्रस्तुत प्रसंग को कहानी में यो प्रस्तुत किया है - "उसकी लाश देर तक पडी रही। बाद में कुछ भीड़ इकट्ठी हो गयी। लाश लावारिस पायी गयी थी। कुछ देर बाद उसे पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। यह जानना ज़रूरी था कि उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई थी या किसी ने इसको जहर-वहर दे दिया था अथवा किसी ने गला घोंटकर मार डाला था।"[2] यही है शहरी संस्कृति। वहाँ इनसानियत के लिए कोई स्थान नहीं। सब अर्थ और यश के पीछे है। इस होड में आम आदमी का दम घुटता जा रहा है। दूबर गाँव

---

1. अमरकांत, कुहासा, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 14
2. वही, पृ. 28

का लड़का था, शहर के तौर-तरीके से वह परिचित नहीं था। इसलिए दो संस्कृतियों के बीच वह तडपता रहा। अंत तक वह पहचान भी नहीं पाया कि सत्य क्या है?

नष्ट होती ग्रामीण संस्कृति की ओर इशारा करनेवाली कहानी है 'वह हंसी'। प्रस्तुत कहानी का नायक बरसों बाद अपना गाँव लौट आता है लेकिन वहाँ आकर उसे अजनबीपन महसूस होता है। गाँव शहर में तब्दील हो गया था। वह अपने पुराने गाँव को याद करता है - "पकी ईंटों व खपरैल के वे छोटे-छोटे मकान कहाँ गये और वे झंखाड़ पेड तथा दरवाज़ों पर खाट डालकर हुक्का गुड़गुडाने और बतकूचन करनेवाले लोग? उनकी जगह अब सडक के दोनों और कई मंजिलों के मजबूत और खूबसूरत मकान सुशोभित हैं, जिनके निचले हिस्सों में आकर्षक शो-रूमवाली बडी-बडी दूकानें खुल गयी हैं, भीड-भाड वाले बाज़ार के रूप में परिवर्तित इस मुहल्ले के भाग्य में अब थोडा-सा आकाश, कम हवा और अधिक घुटन बची रह गयी है।"[1] जिस गाँव की वह आज याद करता है वह केवल यादों में मात्र है लेकिन वहाँ कुछ निशाने तो ज़रूर शेष पडा है। शीशम का पेड, भृगु आश्रम आदि। वह फिर यादों में खो गया। "रात-दिन के साथी मुहल्ले के इस सबसे बडे पेड पर न मालूम कितनी गिलहरियाँ दौडती रहतीं। पक्षी बसेरा लेते, छाया में रास्ते के मुसाफिर विश्राम करते और इक्का-तांगावाले अपने घोडों के पैरों में नाल ठुकवाते। उसके नीचे उसने कितनी बार अपने-भाइयों और दोस्तों के साथ गुल्ली - डंडा, कबड्डी, कंचे और लट्टू फाड-फाड़ खेले थे।"[2] वहाँ गाँव की

---

1. अमरकांत, वह हंसी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 399
2. वही, पृ. 400

प्राकृतिक संपदाओं में भी कुछ न कुछ परिवर्तन तो आया है - "जगह-जगह छोटे रंग-बिरंगे फूलोंवाले झाड़, कँटीले पौधे और भौरे हवा में झूल रहे हैं। दायें-बायें ककडी और खरबूजे के खेत नज़र आ जाते हैं। कितनी दूर चली गयी है गंगा। गंगा और सरयू का संगम है, वहाँ बडी चहल-पहल है, मनुष्यों से अधिक पक्षियों की, जैसे कोई जन मनाया जा रहा है। हंस-बगुले, सारस, मुर्गाबी, हारिल, मैना, सुग्गे और अन्य कई तरह के छोटे-बडे पक्षी मोटी-पतली तथा एकदम महीन आवाज़ों में हल्ला मचाए हुए हैं। दोनों नदियों के रजत जल की तरंगे धूप में चमक-दमक रही है।"[1] नायक वहाँ की प्रकृति की सुंदरता का आस्वादन कर रहा है जो अब उसके लिए अन्य है।

निष्कर्षतः अमरकांत ने गाँव से शहर की ओर गए आदमी के मानसिक अंदर्द्वंद्व को उद्घाटित किया है जो अपने गाँव वापस आकर उन्हें महसूस हो रहा है। शहर में रहते हुए वह अपने गाँव की मिट्टी के सौगंध को पहचान लेता है। गाँव आकर उसकी नष्ट होती संस्कृति से निराश भी है और बची हुई सुंदरता से खुश भी। अपनी मिट्टी से दूर होकर वह अपने को विस्थापित महसूस करता है। शहर जाकर वह उद्योग-धंधे तो शुरू करता है लेकिन वहाँ भी वह अपने को कटा हुआ महसूस करता है ताकि शहर उसका अपना नहीं है, उससे आत्मीयता महसूस करना उसके लिए मुश्किल है। ग्रामीण और शहरी संस्कृति के बीच के इस द्वंद्व को प्रस्तुत करते हुए अमरकांत ग्रामीण संस्कृति के संरक्षण पर बल देते हैं और शहरी संस्कृति की कपटता और संवेदनशून्यता का खुलासा करते हैं।

---

1. अमरकांत, वह हंसी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 405

5.3.9 धर्म और संस्कृति

संस्कृति का धर्म के साथ गहरा संबन्ध है। जैसे संस्कृति मनुष्य को महान बनाती है, उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन में धर्म का भी बहुत बडा प्रभाव है। शंभूनाथ के शब्दों में - "दुनिया के सभी धर्मों में किसी-न-किसी बहाने से मनुष्य को तुच्छता से उच्चता की ओर या पशुता से उच्च मानवीय आदर्शों एवं नैतिक गुणों की ओर ले जाने की व्यवस्था है। कहीं वेद अस्तित्व में आया, कहीं जरथुस्त का संदेश, कहीं बाइबिल बना तो कहीं कुरान और हदीस बने। ये मानव सभ्यता को आकार देने के लिए बने थे, उसको तहस-नहस करने के लिए नहीं।"[1] भारतीय संस्कृति के मूल्यों और आदर्शों के पालन में धर्म अहम भूमिका निभाता है। भारतीय संस्कृति की एक विशेषता भी यह है कि यहाँ जितने भी धर्म है वे सब इस संस्कृति में घुल-मिल गए हैं। यहाँ जितनी भी जातियाँ, मंडलियाँ आ बसे हैं वे सब भारतीय संस्कृति के अंग बन गए हैं। अर्थात् भारतीय संस्कृति की एक अहम विशेषता है - समन्वय की साधना। यहाँ अनेक धर्मावलंबी लोग रहते हैं। सदियों से उन सब में एक सामंजस्य की स्थिति यहाँ विद्यमान थी। दूसरे शब्दों में कहे तो सहिष्णुता की भावना यहाँ की संस्कृति की मुख्य विशेषता है। लेकिन इन धर्मों के मूल तत्वों को सही अर्थों में आत्मसात करने में जब विघ्न आ जाता है तब ऐसी बातें बीच में उत्पन्न हो जाती है जो बौद्धिक दृष्टि से नकारात्मक है। डॉ. एस राधाकृष्णन के अनुसार "सभी धर्मों में जीवन पर बल देनेवाले और जीवन का निषेध करनेवाले

---

1. शंभूनाथ, ईश्वर और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति, पृ. 16

मनोवेगों का परस्पर संघर्ष है।"[1] उसमें से अच्छे और बुरे का निर्णय करके अच्छे को स्वीकारना चाहिए। अमरकांत की कहानियों में उपर्युक्त दोनों पहलुओं का जिक्र हुआ है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता पर बल दिया है साथ ही साथ धर्म के नाम पर प्रचलित अंधविश्वासों को अभिव्यक्ति देते हुए उसको समाज से हटाने का आह्वान भी दिया है।

5.3.9.1 धार्मिक सहिष्णुता का आह्वान

सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की मुखमुद्रा रही है। प्राचीन काल से लेकर यहाँ, भारतभूमि पर विभिन्न संस्कार की मंडलियों का आगमन हुआ है लेकिन भारत की मिट्टी में आकर वे सब यहाँ की संस्कृति के अनुरूप धुल-मिल कर रहने लगे। भारत में उपनिवेश के इतिहास को परखने पर पता चलता है कि यहाँ जितने भी उपनिवेश हुए हैं वे सब भिन्न देश वासी थे, मतलब भिन्न संस्कृतिवाले, भिन्न-भिन्न धर्मों पर आस्था रखनेवाले। भारतमाता ने उन सबको अपनी गोद में बिठाया और एक छत्र के नीचे पाला, पोसा। प्रत्येक युग में धार्मिक सहिष्णुता पर बल देते हुए यहाँ के शासकों ने शान्ति और समता का मंत्र दुहराया। मौर्य साम्राट अशोक ने बारहवें शिलालेख में धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए कहा है कि मनुष्य को अपने धर्म का आदर तथा दूसरे धर्म की अकारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। अनेकानेक कारणों से अन्य धर्मों का आदर करना चाहिए। ऐसा न करने पर मनुष्य अपने सम्प्रदाय को क्षीण करता है तथा दूसरे के सम्प्रदाय

---

1. डॉ. एस. राधाकृष्णन, भारतीय संस्कृति कुछ विचार, आमुख से

का अपकार करता है। जो कोई अपने सम्प्रदाय के प्रति तथा उसकी उन्नति की लालसा में दूसरे धर्म की निन्दा करता है वह वस्तुतः अपने सम्प्रदाय की बडी हानि करता है। लोग एक दूसरे के धर्म को सुनें। इससे सभी सम्प्रदाय बहुश्रुत होंगे तथा संसार का कल्याण होगा। भारत ने उन विदेशी धर्मावलंबियों को भी शरण प्रदान किया जो अपने यहाँ से सहायता मांगकर यहाँ आये थे। मुगल सम्राट अकबर ने भी धार्मिक सहिष्णुता की माँग की और सहिष्णु धर्म दीने इलाही की स्थापना की थी। यहाँ के साधुओं और संतों ने भी धर्मों के बीच सामन्जस्य और एकता पर बल दिया। आज भी धर्मनिरपेक्ष भारत की मजबूत इमारत सहिष्णुता की नींव पर ही खडी हो सकी है, यहाँ सभी धर्मावलंबी अपने-अपने मतों को मानते हुए जिंदगी गुज़ारते हैं।

इन सभी बातों के अपवाद के रूप में भारत में सांप्रदायिकता की लहरें उठ खडी हुई थी। अमरकांत ने अपनी कहानी 'मौत का नगर' में इसका जिक्र किया भी है। सांप्रदायिकता का चित्रण उन्होंने इसलिए किया है कि उनका मन धार्मिक सहिष्णुता की माँग करता है। वास्तव में सांप्रदायिक भेदभाव समाज के ऊपरी तौर पर के लोगों के बीच में ही विद्यमान है, निचले तबके की जनता यानी आम आदमी मन ही मन यह भेदभाव नहीं चाहता। 'मौत का नगर' में अमरकांत ने इस यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। कहानी सांप्रदायिक दंगे की विभीषिका की ओर इशारा करती है। सांप्रदायिक दंगे के पहले की स्थिति को व्यक्त करते हुए अमरकांत कहते हैं - आज़ादी के बाद दोनों मोहल्लों के लोग प्रेम से रहने लगे थे। वे आपस में व्यवहार रखते थे। मुसलमान ग्वालों के यहाँ से हिन्दू लोग दूध ले आते तो और हिन्दू

बनियों के यहाँ से मुसलमान उधार सामान ले आते थे। शादी-ब्याह में वे एक-दूसरे के यहाँ जाते थे और एक-दूसरे की मदद करते थे। दोनों मोहल्लों के लडकों के बीच अक्सर क्रिकेट या फूटबाल के मैच होते रहते थे। अभी दो-तीन वर्ष पहले जमील नामक एक लडका राम के मोहल्ले में काफी लोकप्रिय हो गया था। ....उसने 'वीर अभिमन्यू' नाटक में सुभद्रा का अभिनय किया था।"[1] इस प्रकार मोहल्ले के लोग बिना धार्मिक भेदभाव के प्रेम के साथ रह रहे थे। अचानक सांप्रदायिक दंगा फूटा था। लेकिन आम जनता के बीच के प्रेम और भाइचारे की भावना को तोडने की शक्ति उसमें नहीं थी। अगर वे एक दूसरे से अलग हुए तो उसके पीछे मानसिक विद्वेष नहीं था, अपने परिवारवालों की चिंता और अपनी जान का डर था। फिर भी मानसिक तौर पर वे अलग होना नहीं चाहते थे। कहानी की यह घटना इसका प्रमाण है कि राम और उसके दो मित्र दंगे के बाद जब बाहर निकलते हैं तब उसकी और दौडकर आए नौजवान को वे अपने साथ मिला लेते हैं, यह जाने बिना कि उसका धर्म क्या है? इतना ही नहीं जब एक मुसलमानी मोहल्ला आ गया तो एक आदमी उसकी रक्षा के लिए आता है - "उसने कहा बाबूजी आप सीधे चले जाइए, घबराइए नहीं.... उफ कैसा खराब ज़माना आ गया है। आप मजीद दूधवाले के यहाँ से दूध लेते हैं न?..... मजीद मेरे मामू हैं। आप बेफिक्र चले जाइए। बाबूजी आपसे एक बात कहता हूँ। आप दो-तीन दिन न निकलिए। समय ठीक नहीं है.... अच्छा आप चले जाइए.... मैं यहीं खडा हूँ...।"[2]

---

1. अमरकांत, मौत का नगर, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 1, पृ. 377
2. वही, पृ. 380

अर्थात् लोग आपसी विद्वेष नहीं चाहते हैं और मन ही मन सौहार्द की आशा करते हैं। बिना किसी भेदभाव के वे एक दूसरे की रक्षा करना चाहते हैं।

प्रत्येक लेखक सांप्रदायिक वैषम्य जैसी सामाजिक समस्या का चित्रण इसलिए करते हैं कि वे समाज से इस समस्या का उन्मूलन करना चाहते हैं। अमरकांत भी ऐसे लेखकों में से है जो समाज में हर मायने में शान्ति और समता कायम रखना चाहते हैं। उन्होंने सांप्रदायिक दंगे और उससे उत्पन्न विभीषिकाओं का चित्रण करने के साथ जनता की मानसिक संवेदनाओं और आपसी प्रेम का चित्रण इसलिए किया है कि वे धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन करना चाहते हैं सांप्रदायिक भावना का नहीं। वे सिद्ध करना चाहते हैं कि इतनी सारी दुविधाएं होने के बावजूद भी सहिष्णुता की यह भावना भारतीय जनता के बीच से गायब नहीं हुई है जो भारतीय संस्कृति की नींव है।

5.3.9.2 धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध

भारतीय संस्कृति में धर्म का बहुत बडा स्थान होता है। यहाँ की संस्कृति किसी एक धर्म का नहीं है बल्कि उसमें कई धर्मों का संगम है। मतलब यहाँ के लोग भिन्न-भिन्न धर्मों पर आस्था रखते हैं। लेकिन यह आस्था या विश्वास कभी-कभी अंधविश्वासों में तब्दील होने का माहौल पैदा करता है। यह अंधविश्वास ज़्यादातर अशिक्षित लोगों के बीच ही प्रचलित है। अशिक्षित जनता इतना निरीह एवं निष्कलंक होती है कि जो भी वे सुनती है उसमें विश्वास कर लेती है,

कहनेवाला किसी साधु महात्मा के वेशधारी है तो शक की कोई गुंजाइश ही नहीं। यह संस्कृति का एक नकारात्मक पक्ष है।

अमरकांत की कहानी 'बउरैया कोदो' इस मुद्दे को उजागर करनेवाली है। रामबाबू बनिया अपने घर के अंगन में कोदो धूप में सूखने के लिए डाल दिये थे। बनिया अपने बेटे प्रकाश को उसकी देख-रेख करने के लिए कहकर काम के लिए रवाना हो गया। कुछ देर वहाँ खडे होने के बाद प्रकाश गुल्ली-डंडा खेलने के लिए चला गया। अचानक एक गधा वहाँ आया। गधा बडे ही उत्साह से कोदो खाने लगा। खाते-खाते गधा पहली बार उछला, दूसरी बार उछला और तीसरी बार उछलकर अपने टाँगों की रस्सी भी तोड डाला। अब वह स्वतंत्र विहार करने लगा। अमरकांत कहते हैं - "किसी धार्मिक जुलूस में तलवार भाँजने का कमाल दिखानेवाला जिस तरह हर दिशा में दौडकर हवा में तलवार भाँजता और घोंपता है, उसी तरीके की दौड गधे की भी थी।"[1] गधा वहाँ रखी सभी चीज़ों का सत्यनाश करने लगा। गधे के करतब देखकर सबके होश फाख्ता हो गये। भय और आतंक से सब काँप रहे थे। उसमें से कुछ लोग हिम्मत के साथ लाठियाँ लेकर आये। जब एक व्यक्ति ने लाठी को तलवार की तरह तान ली तो वहाँ एक टीकाधारी महापुरुष ने नंगेबदन प्रवेश किया। वह लाठीदारी से कहने लगा - "भैया बात समझो, शान्ति से काम लो। नहीं मानोगे तो सबको भुगतना पडेगा। इस मोहल्ले में कौन-सा कर्म नहीं होता? अब पाप का घडा भर गया समझो। जब अति हो जाती है तो ईश्वर भी

---

1. अमरकांत, बउरैया कोदो, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 30

कुपित हो जाता है। यह गधा नहीं, कोई अवतार है। जो जीवात्मा महान होती है, उसी में परमात्मा अवतरित होता है। हमारे पाप कर्म से ये नाराज़ है। इनकी पूजा करो, इनके हाथ जोडो, इनको शान्त करो...।"[1] यह सुनते ही सब विश्वास करने लगे। किसी आदमी ने कहा - "हमें तो रोज़ गर्दभ भगवान की पूजा करनी चाहिए...।"[2] गधे की पूजा का इंतज़ाम भी वहाँ हो गया। "....रामबाबू बनिया की पत्नी कलावती महिलोत्थान निकेतन की सदस्या भी थी। उसके नेतृत्व में अधेड़ व बूढ़ी औरतों का एक दल बाहर निकलकर मैदान में एक तरफ से गधे को हाथ जोडकर खडा हो गया। इसके बाद फौरन उनके कंठ से किसी भजन या पूजा गीत की तरह एक समवेत स्वर फूटकर गूँजने लगा।"[3] इस प्रकार कोदो खाने के लिए आया गधा अचानक देवता बन गया।

एक नौजवान बाद में वहाँ आता है। सारी बातें सुनकर वह लोगों को समझाने बुझाने की कोशिश करता है कि गधा एक मामूली जानवर है। वह कहने लगा कि जब किसी व्यक्ति को अप्रत्याशित संतोष आ जाता है तब वह किस तरह उछल कूदकर अपनी खुशी प्रकट करता है ठीक उसी प्रकार कोदो को देखकर गधे ने भी अपनी असीम खुशी का प्रदर्शन किया और उसके परिणाम स्वरूप वह उछलने कूदने लगा। वह कहता है - "मनुष्य हाड-मांस का पुतला है, पर जब अपनी आत्मा में परमात्मा को पा लेता है तो वह चमत्कार करने लगता है, यही

---

1. अमरकांत, बउरैया कोदो, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 32
2. वही, पृ. 34
3. वही

पशु-पक्षियों का भी है।"[1] इसी प्रकार लोग तो समझ गये। लेकिन दूसरी ओर कुछ बच्चों ने तो गधे को भगवान समझकर उसके गले में माला डाला और माथे पर तिलक लगाया। तभी वहाँ एक काला आदमी और उसकी पत्नी आकर बच्चों को भगाया और गधे को लेकर चला गया।

वास्तव में लोग अपनी अज्ञता के कारण इस प्रकार की गलतफहमियों के शिकार हो जाते हैं। जब कोई उसे समझाने के लिए तैयार हो जाता है तो समस्या एक हद तक हल हो जाएगी जैसे कहानी में नौजवान ने किया। अमरकांत ने इस प्रकार की समस्या को उजागर करते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस प्रकार के अंधविश्वास को दुनिया के मुख से हटाना चाहिए। आस्था जब अंधविश्वास में बदल जाएगी तो समस्याएँ उत्पन्न हो जाएगी और सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास होने लगेगा। इसलिए जनता को ढोंगी साधुओं और अंधविश्वास फैलानेवाले अन्य तत्वों से हमेशा सतर्क रहना चाहिए।

5.4 निष्कर्ष

स्वातंत्र्योत्तर युग में भारतीय संस्कृति का नक्शा ही बदल गया था। अंग्रेज़ी उपनिवेश के फलस्वरूप पनपी पूँजीवादी संस्कृति में भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं आदर्शों का अपजय हुआ। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने मानव जीवन को जटिल बनाया। आधुनिकता ने अपने अतिरंजित स्तर पर संस्कृति मात्र का निषेध

---

1. अमरकांत, बउरैया कोदो, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ खंड 2, पृ. 36

करना शुरू किया। आधुनिक बनने की अदम्य इच्छा ने भारतीय जनता को पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के लिए प्रेरित किया। पूँजीपतियों के ज़माने में आदमी अर्थ के पीछे भागने लगा। लेकिन पूँजी तो पूँजीपतियों के हाथ में ही इकट्ठी हुई। धनी और अधिक धनवान बनता रहा और गरीब हमेशा गरीबी झेलने के लिए मजबूर हुई। अमरकांत की कहानियाँ संस्कृति के इस अपजय के काल में लिखी गयी हैं। इसलिए उनमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक समस्याएं जैसे सांस्कृतिक विस्थापन की समस्या धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से उत्पन्न समस्याएँ आदि को आवाज़ मिली है। अमरकांत अपनी कहानियों में इन समस्याओं को अभिव्यक्ति देते हुए सांस्कृतिक मूल्यों के पतन की ओर इशारा करते हैं तथा आगे एक स्वस्थ स्वच्छ संस्कृति की स्थापना की आशा करते हैं।